ISSN No. 2349-4654
नाद-नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूज़िक
वर्ष : 4, अंक : 1, जनवरी 2017

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत शिक्षा प्रणाली में संगति का महत्त्व एवं स्थान

अश्विनी जोशी
शोधार्थी, एस. एन. डी. टी. महिला विद्यापीठ, पुणे

सभी कलाओं का अपना एक विशेष महत्त्व है। सभी कलाएँ अपने आपमें श्रेष्ठ, परिपूर्ण और विकसित हैं—संगीत एक ऐसी कला है जिसमें स्वर, लय और ताल के माध्यम से संगीतज्ञ अपने भावों को व्यक्त करता है। सभी ललित कलाओं में संगीत का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जाता है। संगीत एक अमूर्त कला है और उसका संबंध मानव के संवेदना से है। जब भावों की अभिव्यक्ति स्वर, ताल और लय की मधुरता के साथ होती है, तब संगीत कला का जन्म होता है। इस कला में, गायन के अधीन वादन और वादन के अधीन नर्तन कला है। गायन, वादन और नृत्य इन तीन कालाओं के मिलन से शास्त्रीय संगीत का निर्माण हुआ है। इन तीन ही कलाओं का अंत:संबंध प्रस्थापित हो चुका है।

संगीत की परंपरा वैदिक काल से मानी जाती है। वैदिक काल से वर्तमान काल तक शास्त्रीय संगीत शिक्षा की परंपरा में परिवर्तन और विकास हो रहा है। भारतीय शास्त्रीय संगीत यह एक प्रदर्शन कला कहलाता है। प्रस्तुतीकरण इस कला का अविभाज्य घटक माना जाता है। अत: वर्तमान काल में शास्त्र, क्रियात्मकता इन दोनों विषयों को उतना ही महत्त्व प्राप्त है। कालानुरूप संगीत शिक्षा प्रणाली में बदलाव आए है, विविध संगीत शिक्षण पद्धति में विविध अभ्यास क्रमों का समावेश हुआ है। इन सभी परिवर्तनशीलता में उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में परंपराओं का जतन करने का प्रयास हमेशा से होता आ रहा है।

संगीतज्ञ अपनी भावाभिव्यक्ति गायन और वादन से व्यक्त करता है। संगीत को अभिव्यक्ति का माध्यम माना गया है, जिनमे वे प्रेरणाएँ निहित होती हैं, जिनके बल पर गायन वादन विकास की ओर अग्रसर होते हैं। संगीत का आनंद और सौंदर्य गायन वादन के पारस्परिकता में निहित रहता है।

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत के विविध शिक्षण प्रणालियों के संदर्भ में, गुरु-शिष्य परंपरा, महाविद्यालयीन, संस्थागत और प्राइवेट टिउशन इन सभी का समावेश है। इन सभी शिक्षण प्रणालियों का, 'कला प्रस्तुतिकरण में निपुणता और सौन्दर्यात्मक दृष्टिकोण से वृद्धि' यह एक ही लक्ष्य है। ज्ञान और आनंद का अनुभव संगीत कला का लक्ष्य है। मूलत: स्वर और लय से जुड़ी हुई संगीत कला उस लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक होती है, जो कंठ संगीत एवं वाद्य संगीत के परस्पर योगदान से प्राप्त होता है।

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत शिक्षण प्रणाली में 'संगति एवं संगतकारों' को अनन्य साधारण महत्त्व प्राप्त है। गायन में वादन की संगति, स्वतंत्र वादन में अन्य वाद्यों की संगति और नृत्य में गायन और वादन की संगति का महत्त्व है। प्रस्तुतिकरण की यह तीनों कलाएँ संगति के बिना अधूरी है। गायन कला का प्रस्तुतीकरण सुरवाद्य, तालवाद्य तथा आधार स्वर वाद्यों के बिना अपूर्ण है। इन कलाओं में सौन्दर्यात्मक दृष्टि से वृद्धि के लिए संगति तथा संगतकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

किसी भी संगीत कला की प्रदर्शन की सफलता या असफलता संगतकार पर निर्भर है। इसकी प्रतिती हमें अनेक उदाहरणों से प्राप्त होती है।

1. संगीत की व्याख्या :

'गीतं वाद्यं तथा नृत्तं त्रयं संगीतमुच्यते।'[1]

– संगीत रत्नाकर 1/211

अर्थात 'गीत, वाद्य तदनुरूप नृत्त इन तीनों को संगीत कहा जाता है।' संगीत के सम्बन्ध में ही पं. शारंगदेवजी ने एक अन्य श्लोक में कुछ इस तरह का उल्लेख किया है—

'नृत्तं वाद्यानुगं प्रोक्तं पाद्यं वाद्यं गितानुवार्ति च।
अतो गीतं प्रधानात्वादावाभिधियते।।''

–संगीत रत्नाकर 1/24-252[2]

अर्थात 'नृत्त को वाद्य का अनुगत और वाद्य को गीत का अनुगमन करनेवाला बताया गया है। अत: गीत ही प्रधान है ऐसा कहा गया है। इन दोनों श्लोकों के अनुसार गायन, वादन और नृत्य तीनों कलाएँ परस्पर संबंधी है। तथा ये तीनों कलाएँ प्रस्तुतिकरण में एक दूसरे को अनुगमन करती है। गायन में वादन की, वादन में स्वर वाद्यों की तथा नृत्य में गायन और वादन की संगती अनिवार्य है। इसी आधार पर संगीत की व्याख्या में ही 'संगति' का अप्रत्यक्षरूप से समर्थन अनेक विद्वानों ने किया है अत: उत्तर भारतीय शिक्षण प्रणाली में संगति का महत्त्व अपरिहार्य है।

2. शिक्षा की व्याख्या एवं विविध शिक्षा प्रणालियाँ

मानव बुद्धिजीवी प्राणी है। मन में बसे विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए वो सदा आतुर रहता है। ऐसे विचार या सोच, जो कि स्वयं के ज्ञान में तथा दूसरों के ज्ञान में वृद्धि कर सके। प्रसिद्ध जर्मन शिक्षा शास्त्री पेस्टालजी (Pestalzzi) के अनुसार, 'शिक्षा मनुष्य के जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक, सम्यक और प्रगतिशील विकास है। इसी प्रकार स्वामी विवेकानंदजी के शब्दों में, 'मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त कराना ही शिक्षा है।[3]

2.1 वर्तमानकालीन शिक्षा प्रणाली

2.1.1. गुरु-शिष्य परंपरा—इस शिक्षा प्रणाली में गुरु के सानिध्य में रहकर शिक्षा ली जाती है। इसे गुरुकुल भी कहते हैं। इसमें शिष्यों को परंपरागत पद्धति से कड़ी तालीम दी जाती है।

जिससे विद्यार्थी कला प्रस्तुति में निपुण होता है। उनको सुरों की महानत के बाद, लय और ताल की विशेष शिक्षा दी जाती है। मुख्यता यह शिक्षा विशिष्ट घरानों की शैली के अनुसार दी जाती है। अत: इस शिक्षा प्रणाली के विद्यार्थियों में शास्त्र पक्ष की अनभिज्ञता पाई जाती है।

2.1.2. महाविद्यालयीन शिक्षा—यह शिक्षा प्रणाली अंग्रेजों के शासन काल और उसके उपरांत अधिक प्रचलित हुई। यह प्रणाली विश्वविद्यालय के अंतर्गत तथा विशिष्ट पाठ्यक्रम और निर्धारित कार्यकाल में होती है। इसमें भी सुर और ताल की शिक्षा विद्यार्थियों को दी जाती है। इस प्रणाली में क्रियात्मक और शास्त्र इन दोनों का समावेश होता है। समय के बंधन के कारण इस प्रणाली में कुछ कमियाँ पाई जाती है। तथा इस पद्धति की शिक्षा प्राप्त करने वाला हर एक विद्यार्थी प्रत्यक्ष में परफोर्मिंग कलाकार होता ही है, यह निश्चित नहीं होता।

2.1.3. संस्थागत शिक्षा प्रणाली—इस प्रणाली में एक ही संस्था के अंतर्गत विभिन्न शिक्षकों से अनेक विद्यार्थी संगीत शिक्षा ले सकते है। इस शिक्षा प्रणाली की शिक्षा विशिष्ट पाठ्यक्रम और निर्धारित कार्यकाल में होती है।

2.1.4. निजी शिक्षा वग—प्रायवेट क्लासेस-संगीत क्षेत्र के प्रचलित शिक्षक अपनी अपनी निजी संगीत क्षमाता के अनुसार विद्यार्थियों को शिक्षण देते हैं। इसमें पाठ्यक्रम तथा कार्यकाल की मर्यादा नहीं होती। इसमें विद्यार्थी और शिक्षक दोनों की सन्मति से शिक्षा का स्वातंत्र्य होता है।

3. संगती की व्याख्या

'जब एक कलाकार की कला प्रस्तुति के दौरान दूसरे कुछ कलाकार उसे रचनात्मक सांगीतिक सहयोग देते हैं, पूरी प्रस्तुति के दौरान कदम-कदम पर उसका कलात्मक साथ निभाते है तब उसे संगीत की भाषा में संगत कहते हैं।'[4]

'संगति शब्द का शाब्दिक अर्थ अनुगमन, सहचर्य अथवा मिलन होता है।'[5]

सं + गत = संगत, याने साथ चलना तथा अंग्रेजी में Accompaniment कहते है।

पं. सुरेश तलवलकर के अनुसार—''संगति तथा साथ संगत का अर्थ केवल साथ चलना या सहयोग कराना ही नहीं बल्कि साथ मिलकर, जुड़कर, समन्वय बनाकर चलना।''[6]

4. गायन के विशेष संदर्भ में संगति का महत्त्व

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत कला में गायन-पद्धतियों कला में ध्रुपद, धमार, ख्याल, तथा उपशास्त्रीय में, ठुमरी, दादरा, होरी यह गायन शैलियाँ प्रचार में है। इन सभी गायन-पद्धतियों का प्रस्तुतीकरण तथा संगत वाद्यों में विविधता पाई जाती है।

4.1. ध्रुपद धमार—प्रबंध गीत प्रकार के बाद यह गीत पद्धति प्रचार में आई। ध्रुपद, धमार यह लय पर आधारित गीत पद्धति है। इस गीत प्रकार में पखावज इस ताल वाद्य की संगति तथा सारंगी इस सुर वाद्य की और तानपुरा यह आधार सुर वाद्य की संगति होती है।

ध्रुपद एक गीत प्रकार है तथा इसकी प्रकृति गंभीर, शांत और भक्ति रस प्रधान है। अत: ध्रुपद के लिए खुले बोल वाले पखावज की संगति अधिक प्रभावशाली लगती है।

4.2. ख्याल—वर्तमान काल में ख्याल सबसे अधिक लोकप्रिय है। ख्याल गायन के शैली के अनुसार इसमें तबला, सारंगी या हारमोनियम तथा तानपुरा की संगत होती है। ख्याल गायन पड़ाव में प्रत्येक स्वर और ताल वाद्य की संगति भिन्न रूप से होती है। ख्याल की बंदिश, आलाप, बोल आलाप, बेहेलावे, तान इन सभी प्रकार में ताल और सुर वाद्य की संगति में बदलाव होते है। संगति के योग्य प्रभाव से ख्याल गायन में सौन्दर्य या रस की निर्मिती हो सकती है। श्री भास्कर चंदावरकर के अनुसार—''ख्याल गायन के विविध घरानों के अनुसार सुर तथा ताल वाद्यों की संगति आवश्यक होती है।''[7]

4.3. ठुमरी, दादरा, टप्पा—उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में निहित उपशास्त्रीय गीत प्रकार में ठुमरी, दादरा, यह गीत प्रकार शब्द, लय, भाव पर आधारित है। इसमें शब्द और भाव की प्रधानता अधिक होने के कारण सारंगी जैसे सर वाद्यों की संगति अधिक प्रभावशली होती है। लय के संगति के लिए तबला ताल वाद्य होता है। इस के साथ गायन के अंत में लग्गी लगाने के बाद सुर, लय, तथा शब्द और भावों से गायन में सौंदर्य की निर्मिती होती है। टप्पा यह गीत प्रकार लयकारी के ऊपर आधारित है। छोटी-छोटी मुर्किया तथा तानों के साथ इसका गायन किया जाता है। इसमें सारंगी/ हारमोनियम और तबला संगति के लिए उपयोग में लाए जाते है। छोटी तानों के साथ गाते वक्त तबले की संगति अधिक प्रभावशाली होनी आवश्यक है, इसी से टप्पा गायन में सौंदर्य का निर्माण हो सकता है।

5. स्वतंत्र वादन के सम्बन्ध में संगति का महत्त्व—उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में स्वतंत्र वादन की परंपरा लगभग डेढ़ शताब्दी पूर्व से प्रचलित

है। वर्तमान काल में स्वतंत्र वादन का विकसित रूप हम देख रहे है। उसके पहले वाद्यों का उपयोग केवल संगति के लिए किया जाता था। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो, एकल वादन और वादक का महत्त्व सदारंग के बाद ही अधिक प्राप्त होता है। स्वतंत्र वादन में स्वर और ताल वाद्य इन दोंनों का समावेश होता है।

5.1 स्वतंत्र स्वर वादन में संगति—वीणा वादन से स्वतंत्र वादन की शुरुआत हुई। इसके बाद धीरे धीरे बासुरी, सितार, सरोद, संतूर, सारंगी, बेला और हार्मोनियम इन वाद्यों में स्वतंत्र वादन होने लगा। स्वतंत्र वादन में गायकी अंग और ततकारी अंग से वादन होता है। इन सभी वाद्यों को तबला की संगति होती है। तत अंग में निहित झाला, ज़मजमा क्रिन्तन इन प्रकारों का वादन करते वक्त स्वतंत्र तबला वादन में प्रयोग होनेवाला उठान, पेशकर, कायदा, रेला, गत, तिहाई, टुकड़ा, मुखड़ा इन रचनाओं का किसी सीमा तक संगति में प्रयोग लिया जाता है। इस प्रकार स्वर वाद्यों का जल्द वादन तथा तबले पर स्वतंत्र रचनाये इनके मिलाप से सौंदर्य तथा रस निर्मिती होती है।

घर्षण या फूँक से बजाये जाने वाले वाद्यों में बेला, सारंगी और बाँसुरी इन वाद्यों का समावेश होता है। इन वाद्यों का स्वतंत्र वादन गायकी अंग से होता है। इन वाद्यों में गायन की संगति के समान तबला संगति होती है किन्तु गायन की संगति की तुलना से तबला वादक को संगति में थोड़ी अधिक स्वतंत्रता मिलाती है।

5.2 स्वतंत्र ताल वाद्यों में संगति—स्वर वाद्यों में स्वतंत्र वादन प्रचलित होने के बाद ताल वादकों ने भी अपने वाद्यों की विविध रचनाओं का निर्माण किया और ताल वादन की शुरुआत की। सर्वप्रथम पखावज वादक कुदऊ सिंह ने स्वतंत्र वादन का प्रयोग किया? तबला वाद्य के प्रचार के बाद तबला वादन के भी स्वतंत्र प्रयोग होने लगे। यह तबला मुख्यत: गायन शैलियों में प्रयुक्त तालों पर होता है।

स्वतंत्र वादन में तबला या पखावज वादक अपनी इच्छाओं के साथ ताल, बोल, बंदिश और लय से वादन करता है। इस वादन में सारंगी तथा हारमोनियम जैसे सुर वाद्य विशिष्ट रागों का प्रयोग नगमा या लहरा वादन संगति में करते है। इन स्वरों के प्रभाव से ताल वाद्य की रचना में सौदर्य निर्मिती होने में मदत होती है।[9]

6. कथक नृत्य के सम्बन्ध में संगति का महत्त्व—उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में कथक नृत्य का एक ऊँचा स्थान है। इस नृत्य कला में नृत्त, नृत्य और अभिनय इन तीनों का सवावेश होता है। नृत्य यह कला अधिकतर लय ताल पर आधारित है। इसमें तबला यह ताल वाद्य और सितार, सारंगी, हारमोनियम, बासुरी आदी वाद्यों का संगति में उपयोग करते हैं। कथक नृत्य में निहित भाव पक्ष के अभिव्यक्ति के लिए सुर वाद्यों का विशेष महत्त्व है तथा कथक के बोलों के साथ घुँघरूओं के पदन्यास के साथ तबला वाद्य की संगति होती है।[10]

ठुमरी, दादरा, होरी, तराना, चतरंग और कवित्व इन गायन प्रकारोंके लिए गायन की संगति होती है।[11] इन सभी वादन गायन के सुमेल से कथक में रस निर्मिती होती है।

7. संगीत शिक्षा प्रणाली में संगति का महत्त्व और उसके अनुसार अभ्यास-क्रम की उपलब्धता :

उपरोक्त कथन के अनुसार उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में निहित सभी गायन, वादन और कथक नृत्य प्रकार में संगति का उपयोग अनिवार्य है यह हमने देखा। संगीत कला के सौन्दर्य वृद्धि के लिए संगति का महत्त्व अनन्य साधारण है।

कला की शिक्षा के स्तर से ही उस कला का स्तर निश्चित होता है। संगीत की विविध शिक्षा प्रणालियों में संगति के अभ्यास-क्रम की उपलब्धता के ऊपर प्रस्तुत चर्चा करना चाहती हूँ—

1. गायन शैली के पक्ष में सुर और ताल वाद्यों की संगति का महत्त्व छात्रों को समझाकर तानपुरा यह आधार सुर वाद्य के संगति का महत्त्व समझाना आवश्यक है।
2. गायन में निहित विविध गीत प्रकारों में सुर और ताल वाद्य की संगति के परस्पर भिन्नता को तुलनात्मक रूप से सिखाना जरूरी है। उदाहरण के लिए सारंगी इस सुर वाद्य की तथा तबला इस ताल वाद्य की ख्याल गायन में संगति भिन्न है और ठुमरी दादरा इस उपशास्त्रीय गायन शैली में संगति परिणामस्वरूप भिन्न है।[12]

गायन के विद्यार्थियों को ख्याल की शिक्षा देते समय लयकारी के विविध अंग की शिक्षा एवं विशेष मार्गदर्शन देना आवश्यक है। उदाहरण विलंबित ख्याल गायन की बंदिश प्रस्तुतीकरण के समय ताल का शुद्ध ठेका अनिवार्य है। राग विस्तार में स्वर आलाप के अनुसार लय प्रकृति इन सब घटकों का राग की रस निर्मिती पर सकारात्मक परिणाम होता है।[13]

तथा मुखड़ा गा कर सम पर आना, बहलावा गाते समय उचित लय देना इन बातों का मार्गदर्शन क्रियात्मक अभ्यास-क्रम में अधिक सखोलाता से समाविष्ट होना आवश्यक है।

3. संगीत शिक्षा में प्रत्येक वाद्य की संगति की भूमिका और स्वतंत्र वादन की भूमिका पर विचार करना आवश्यक है। संगीत की तीनों कलाओं का परस्पर अंत:सम्बन्ध है। इसलिए इन तीनों कलाओं के विद्यार्थिओं को सभी कालओं के प्रस्तुतिकरण और उनकी संगति की जानकारी होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए ''तबला वादक को कथक नृत्य की संगत करते समय कथक के बोल की जानकारी होना आवश्यक है।''[13] तथा गायन के घरानों की शैली नुसार संगति भिन्न होती है। यह जानकारी तबला विद्यार्थी को देना तथा मार्गदर्शन करना जरूरी।
4. संगति से संगीत कला में परिणामकारकता का निर्माण होता है। संगीत की सभी शिक्षा प्रणालियों में कुछ ना कुछ कमियाँ हैं।[15] सभी संगीत शिक्षा प्रणालि में प्रत्यक्ष रूप से संगति यह विषय अभ्यास क्रम में विस्तृत रूप से उपलब्ध नहीं है। अत: सभी

शिक्षा प्रणालि में इस विषय का का अवश्य समावेश करना चाहिए।

5. शास्त्र पक्ष में प्राथमिक जानकारी के लिए संगति विषय का समावेश करना चाहिए। उसके उपरान्त क्रियात्मक अभ्यास के समय विद्यार्थियों को यह विषय समझने में आसानी हो सकती है।
6. शास्त्र के साथ-साथ कला की प्रस्तुतीकरण में संगति समझने के लिए महाविद्यालायों में मान्यवर कलाकारों के चर्चासत्र तथा मार्ग-दर्शन पर प्रात्यक्षिक व्याख्यान (लेक्चर डेमोन्स्ट्रेशन) का आयोजन करना चाहिए।[16]
7. संगति विषय का महत्त्व तथा आवश्यकता का विद्यार्थियों को प्रमाण देने के लिए, दिग्गज कलाकारों के विडियो रिकॉर्डिंग दिखाकर, उन कलाकारों के मंच प्रदर्शन के दौरान संगति का प्रदर्शन और सांगीतिक व्यवहार का विवेचन करना आवश्यक है। उदाहरण के लिए कुछ ऐसी साथ संगति की मिसाल प्रस्तुत कर रही हूँ। पं. उल्हास कशालकर जी और पं. सुरेश तलवलकर जी, पं. भीमसेन जोशी जी और पं. आप्पा जलगांवकर जी, पं. रवि शंकर और उ. आल्लार खां साहेब इत्यादि।

इस प्रकार संगति का तथा क्रियात्मक रूप से अभ्यासक्रम (चर्चा-सत्र, प्रात्यक्षिक व्याख्यान, विडियो-ऑडियो रिकॉर्डिंग सुनना, मुलाकात इत्यादि) शिक्षा प्रणाली में समावेश करने से संगीत कला में सौंदर्य निर्माण करने वाली संगति का ज्ञान सभी विद्यार्थियों को अवश्य मिलेगा।

निष्कर्ष

संगीत कला की परमोच्च सीमा निर्माण में संगतिका अनन्य साधारण महत्त्व उपरोक्त घटकों से प्रस्थापित होता है।

परन्तु प्रस्तुतीकरण में संगति की मुख्य भूमिका का अभ्यास और निरंतर निरिक्षण करना आवश्यक है।

वर्तमान काल में संगति का संकलित ज्ञान और उसका महत्त्व आज के आधुनिक तंत्र-ज्ञान (मीडिया और टेक्नोलॉजी) के उपयोग से हो रहा है। अत: इसका संगीत शिक्षा प्रणाली में अधिक उपयोग करके शिक्षा का स्तर ऊँचा करना चाहिए, इससे संगीत कला का स्तर भी ऊँचा करने में सहायता होगी।

पाद-टिप्पणियाँ

1. पं. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, स्वर गत्ताध्याय, प्रथम अध्याय, श्लोक 21
2. वही, श्लोक 24
3. श्रीवास्तव, हरिश्चंद्र, संगीत निबंध, संगीत कार्यालय हाथरस, पृ. 16
4. भीमसेन सरल, तबला सांगत एवं कलाकार स्थान स्थिति और योगदान, कनिष्क प्रकाशन, दिल्ली पृ. 36
5. संगीता सिंह, उत्तर भारतीय संगीत में तंत्र वाद्यों का स्थान एवं उपयोगिता, कनिष्क प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 123
6. चंदावरकर, भास्कर, वाद्यवेध आणि भारतीय संगीताची मूलतत्त्वे, राजहंस प्रकाशन, पृ. 191
7. Op.cit संगीता सिंह, पृ. 109
8. मिश्रा, अरुण, भारतीय कंठ संगीत और वाद्य संगीत-गायन वादन सुमेल, कनिष्क प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 80
9. रामशंकर पागलदास, संगीत कला विहार, जानेवारी 1967, मृदंग, तबला और साथ, पृ. 38
10. कर्ण, नागेश्वर लाल, कथक नृत्य के साथ तबला संगति, कनिष्क प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 103
11. Shobana Narayan, Kathak - Wisdom Tree
12. Op.cit संगीता सिंह, पृ. 144.
13. तलवलकर, सुरेश, आवर्तन-भारतीय संगीतातील स्थूलता अणि सूक्ष्मता, पृ. 106
14. Vatsyayan, Kapila, Indian Classical Dance, Ministry Of. Info. & Broadcasting Govt Of India
15. कपूर, तृप्त, उत्तर भारत में संगीत शिक्षा, हर्मन पब्लिशिंग हाउस, पृ. 33
16. राजश्री, सांस्कृतिक शिक्षा के उद्विकास में संगीत का योगदान, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ. 425